UNIVERSAL LIBRARY
OU_182067
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.5 | V 69 S Accession No. G.H. 185

Author विजयवर्गीय, रामगोपाल।

Title झालवाड़ 1941

This book should be returned on or before the date last marked below.

भीम और द्रौपदी

शतदल

श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

परिचय-लेखक

रायबहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास

और

श्री रामचंद्र टंडन

१९४१

विजयवर्गीय कलामंडल

जयपुर

मुद्रक—ओंकार प्रसाद गौड़, मैनेजर, कायस्थ पाठशाला प्रेस तथा प्रिंटिंग स्कूल, इलाहाबाद ।

परिचय

[१]

इस पुस्तक के रचयिता श्री रामगोपाल विजयवर्गीय एक उच्चकोटि के कलाकार हैं। उन की चित्रकला की विभूति से कलाप्रेमी बहुत दिनों से परिचित हैं। कई वर्षों से उन से घनिष्ठ संबंध होते हुए भी मैं यह नहीं जानता था कि वे एक उच्चकोटि के कवि भी हैं। यों तो साहित्य और कला का अविच्छिन्न संबंध सदा से चला आया है। गढ़वाल के अद्वितीय कलाकार मोलाराम की प्रायः सभी कृतियां उन की ही कविताओं से प्रभावित हुई हैं। राजपूत शैली के राग-रागिनी तथा अन्य चित्र चित्रकारों की बनाई हुई कविताओं के आधार पर बना करते थे, और कहीं-कहीं तो चित्रकार चित्र के ऊपरी भाग में उन कविताओं को अपने हाथों से लिख भी दिया करता था। परंतु जब से आधुनिक शैली का प्रचार हुआ है, तब से यह प्रथा कुछ बंद-सी हो गई है, यद्यपि आधुनिक चित्रकला-मर्मज्ञों में श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर तथा श्री असितकुमार हलदार ने चित्रकला और साहित्य का ग्रंथिबंधन अपने हाथों से किया है। दोनों ही महापुरुष चित्रकला के अद्वितीय कर्णधार होते हुए अच्छे कवि भी हैं। श्री विजयवर्गीय जी के चित्रों के लावण्य को देख कर इन के काव्य की उत्कृष्टता पर आश्चर्य नहीं होता। मैं विजयवर्गीय जी को उन की काव्य-रचना पर बधाई देता हूं।

प्रयाग

ता० १८ अगस्त, १९४१

ब्रजमोहन व्यास

अब से सात वर्ष पूर्व सन १९३५ में मुझे इस बात का सुअवसर प्राप्त हुआ था कि एक चित्र-संग्रह प्रकाशित कराकर मैं श्री रामगोपाल विजयवर्गीय जी के चित्रकला-कौशल से लोगों को परिचित कराऊं। उस समय मुझे यह बात मालूम न थी कि विजयवर्गीय जी हिंदी काव्य-रचना का भी अभ्यास कर रहे हैं। लेकिन दूसरे ही वर्ष, अर्थात् १९३६ में उन के चित्रों का एक दूसरा संग्रह डाक्टर सुनीतिकुमार चैटर्जी के संपादकत्व में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ और यह देख कर मुझे किंचित् विस्मय और बहुत कुछ हर्ष हुआ कि वह हिंदी कविता भी करते हैं। इस दूसरे चित्र-संग्रह के चित्रों के साथ जुड़ी हुई कविताएं स्वयं विजयवर्गीय जी की रचनायें हैं। ये रचनायें साधारण कोटि से ऊपर की हैं। इस प्रकार विजयवर्गीय जी दो कलाओं के उपासक हैं। चित्रकला में तो आप ने अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया है, और मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि उन की कविता भी रसिकजनों को ग्राह्य होगी।

इस बीच कवि-चित्रकार ने कविता के क्षेत्र में विस्तृत अभ्यास किया है। उन की अधिकांश रचनायें अभी अप्रकाशित हैं। उन्हों ने तीन खंड-काव्यों की रचना की है, जिन में से एक "शतदल" इस समय प्रकाशित हो रहा है। मुझे आशा है कि शेष दो, अर्थात् "वैदेही-विरह" और "सीता-संदेश" भी यथा-संभव शीघ्र ही वह पाठकों के सामने प्रस्तुत करेंगे। इन खंड-काव्यों के अतिरिक्त उन्हों ने स्फुट पद्य भी लिखे हैं जिन में से कुछ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुके हैं और सभी एक संग्रह के रूप में तैयार हैं।

विजयवर्गीय जी सच्ची लगन के आदमी हैं। ललित-कलाओं के प्रति उन की सहज अभिरुचि है। पुरानी कला की वस्तुओं के संग्रह और संरक्षण के उद्देश्य से उन्हों ने अपने निवास-स्थान जयपुर में एक छोटा-सा संग्रहालय भी स्थापित कर रक्खा है। इसी संग्रहालय—विजयवर्गीय कलामंडल—का प्रथम प्रकाशन पाठकों के सामने है। मुझे इस बात की आशा है कि साहित्य और कला-प्रेमियों को इस में रस प्राप्त होगा।

हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद : रामचंद्र टंडन

१९-८-४१

शतदल

(१)

शैल हिमालय के विशाल शिखरों के मध्य
योजनों प्रशस्त एक शोभित था रम्य बन ।
काकली थी कल पिक और शुक पक्षियों की
सुरलोक-वासियों का देख मोहता था मन ॥
मुग्ध थीं दिशायें वह पावन प्रदेश देख
शान्त रूप बन जैसे मौन हुआ था गगन ।
अपना अनूप रूप देखने विचरती थी
मानो वनदेवी वहाँ धार के मनुष्य तन ॥

(२)

ग्रीवा कण्डूयन करते थे शिलाओं में मृग
    और बैठ करते थे ऋषि-मुनि-गण जाप।
शीतल जलों से भरे सर और सरितायें
    पथश्रम-युक्त पान्थों का हरते थे ताप॥
नील घन जैसे वृक्ष छाये थे सघन अति
    कुसुमों के रंग की थी छवि मानो सुर-चाप।
भव की व्यथाओं से विरक्त नरवृन्द जहां
    योग-युक्तियों से काटते थे निज-निज पाप॥

(३)

मन्द-मन्द मलय प्रवाहित था चारों ओर
    वृक्ष बदरों के अति देते थे मधुर फल।
बदरी अरण्य उस वन का था ख्यात नाम
    स्रोत-समुदाय नाद करते थे कल-कल॥
ऊपर वितान से तने थे तरुवृन्द और
    भूपर बिछे हुए थे मृदु दूर्वा के दल।
दिव्य देवगण के विचरने से प्रति-दिन
    पावन हुआ था उस भूमि का हृदय-तल॥

(४)

राज्य से रहित पाण्डु-पुत्र द्रौपदी के साथ
बदरी अरण्य में निवास-सुख पाते थे।
अतिथि-सत्कार और दीन-उपकार-युक्त
शान्ति से प्रवास-काल अपना बिताते थे॥
भिक्षु कुछ दान, साधु पाते अति सनमान
द्विजगण ब्रह्मज्ञान सतत सुनाते थे।
दुष्टों से रक्षित उस भूमि के निवासी हुए
नित्य पाण्डवों की वीरता का गुण गाते थे॥

(५)

एक समय प्रातः जब तारक विलीन हुए
प्रगटाया गौरव प्रकाश श्रीशाली ने।
त्याग कर शय्या का, प्रणाम किया आदर से
प्यारे पञ्च-पतियों को नत पाञ्चाली ने॥
मुखरित खगों ने बनाया बन-प्रान्त वह
घेरा था गगन को ऊषा की दिव्य लाली ने
सरों में प्रसुप्त सरसिजों को जगा के किया
किरण-समूह का प्रसार अंशुमाली ने।

(६)

हर्ष से विकम्पित थे कलियों के मृदु तन
पायी थी सुवर्णमयी आभा-सी गगन ने।
दौड़ चले अलिवृन्द पान करने को मधु
धार ली वसन्त-जैसी शोभा उपवन ने॥
गन्ध का प्रसार ततकाल हुआ कानन में
मुग्ध किया मन एक शब्द सन-सन ने।
सहसा गिराया द्रौपदी के पद-पद्मों पर
पारिजात पुष्प एक प्रातः पवन ने॥

(७)

देवलोक दुर्लभ उस सुमन ने गिरते ही
मन की प्रसुप्त भावनाओं को जगा दिया।
रंग की रुचिर माधुरी ने बरसाया मधु
हृदय द्रुपद-नन्दिनी का ललचा लिया।
घ्राण से उस की, आनन्दमय प्राण हुए
नयनों ने रूप का अपूर्व सुख पा लिया॥
इच्छा उन्मुक्त द्रौपदी ने होके प्रेम-युक्त
हर्ष से सुकञ्ज कर-कञ्ज में उठा लिया॥

(८)

प्राणपति भीम के समीप जा दिखाया उसे
    एक याचना थी मूक, प्रकट उल्लास में।
पुलकित देह, नव-नेह था हृदय में और
    मानो थी प्रवाहित मन्दाकिनी-सी हास में॥
अधर-पुटों पर थे वचन विकम्पित से
    प्रेम के भरे थे भाव भृकुटि-विलास में।
मोहक त्रिलोकी की विचित्र मोहिनी है भरी
    नाथ! इस सुखद सरोज के सुवास में॥

(९)

मकरन्द मन्द प्राणियों के मन मोहता है
    लीक-सी लगाता लोचनों में रूप निर्मल।
होगा उपहार धर्मराज के समीप यह
    पाऊँ पुष्प ऐसे, चित्त मेरा हुआ चञ्चल॥
आप ही के द्वारा सिद्ध होते मनोरथ मम
    इस का अभाव मुझे देगा दुःख प्रति-पल।
ऐसे ही अनेक लाओ पाओ जहाँ से भी कुछ
    लाओ नाथ, लाओ, यह सौगन्धिक शतदल॥

(१०)

महाबाहु भीम कान्ता की कामना को सुन
लाने को त्वरित वह पुष्प हुये तत्पर।
करते हैं प्रायः जो अनेक कार्यों को सिद्ध
देते हैं प्रमोद द्रौपदी को अति दुःख हर॥
शूरों को सुदूर वस्तु कौन संसार में है
जानते अगम्य को भी गम्य शार्दूल नर।
शीघ्र लौट आने का वचन दे गमन किया
वृषभ स्कन्धों पर वज्र सी गदा को धर॥

(११)

विविधि निकुञ्ज वक्र पथ वन-बीथियों में
लता-द्रुम-जालों को सवेग चले दलते।
वज्र सम चरण-निपात करते थे कभी
पीन उरु-घात से शिलाओं को थे मलते॥
यम-दण्ड जैसे भुजदण्डों को प्रचण्ड किये
विकृत गति से भूमितल को कुचलते।
भीम का स्वरूप भीम देख भागते थे विघ्न
कोटि कायरों से जो न टाले कभी टलते॥

(१२)

छोड़ चले निज-निज नीड़ तरुओं से खग
  मातृ-ममता से हुए विलग विहग-बाल ।
मृगियों ने मुख से निकाल दिया मुख-तृण
  तोड़ चले मृगगण मृगियों का मोह-जाल ॥
कोलाहल सुन वन्य जीव थे सजग हुये
  मानो पैठ गया उस कानन में महाकाल ।
दौड़ चले करियों के साथ उठ केसरी भी
  भीत व्याल बन गये केकियों के कण्ठमाल ॥

(१३)

वायु-सा विकट वेगवान महा भट कभी
  मुष्टिक से उच्च शैल शिखरों को तोड़ता ।
दन्त से विहीन किये पीन-तन गज-यूथ
  वक्ष से विषम तरुवृन्दों को मरोड़ता ॥
चूर्ण करता था कभी दर्प दानवों का और
  दीन वन्य पशुओं के प्राणों को निचोड़ता ।
पूर्ण करने को अभिलाषा निज प्रेयसी की
  तीर-सम वीर चला भूमितल तोड़ता ॥

(१४)

महिष, वराह, शार्दूल, सिंह पशुओं के
प्राणों का विनाश किया बल उपचार कर।
भालु, वृक, आदि को बाहुओं से मर्दन कर
मारा मृगों को कभी चरण-प्रहार कर॥
दृष्टि से दया के किसी प्राणी का न देखा प्राण
मृगया का सद और असद विचार कर।
क्रीड़ा से हृदय में महान मोद पाते वीर
आगे बढ़े जाते थे विविध संहार कर॥

(१५)

शैल गन्ध-मादन शिखर के समीप एक
शोभित सरोवर था जल से भरा हुआ।
योजन विस्तीर्ण कदली का जहाँ रम्य वन
मुखर खगों से वनचरों से चरा हुआ॥
सुन्दर सोपान मणिमय थे पुनीत अति
पीत-वर्ण पङ्कज पराग बिखरा हुआ॥
करने लगा क्रीड़ा वारि-वीचि राशियों में कल
वीर अवगाहन के हेतु उतरा हुआ॥

(१६)

पाया अति मोद जल-पान से विनोद युक्त
खाया तोड़-तोड़ मृदु कमल-मृणालों को ।
विविध विहार किया और संहार कभी
वारि के विचित्र रूप नाना पुष्प-जालों को ॥
शान्तिमय सरोवर कान्ति से विहीन किया
पीन भुज-युग से उछाला उर्मिमालों को ।
विहग-समूह को अतीव भय भान हुआ
ज्ञान हुआ विकट विपत्ति का मरालों को ॥

(१७)

करके विश्राम क्षण निकट सरोवर के
वेग से निरत हुये आगे को गमन में ।
पाया था पावन उत्साह अवगाहन से
आया था नवीन ओज श्रान्त हुये तन में ॥
पाना उस पङ्कज का कौन-सा महान मुझे
अति अभिमान से विचार किया मन में ।
चित्त से चले थे कर संशय निवारण कि
कारण विचित्र एक देखा उस बन में ॥

(१८)

सहसा सुनाई दिया गिरि पर घोर रव
मानो नभमण्डल से विद्युत का पात हो।
शत-शत ज्वालामुखी फूट पड़े पृथिवी से
जैसे शैल-शिलाओं का भीषण आघात हो॥
युद्ध में प्रवीण योद्धाओं की गदा का मानो
एक-दूसरे की ओर घात-प्रतिघात हो।
गिरते हों मानो नक्षत्र नभ-मंडल से
याकि उच्च भूधर का भूपर निपात हो॥

(१९)

उस घोर शब्द की ही ओर धावमान हुये
विषय विचित्र एक कौतुक का जान कर।
कोई भी विपत्ति भूमि पर है कि बाधा कुछ
अघटित किसी घटना का अनुमान कर॥
शोक-कर कौन इस लोक में है मेरे लिये
मैं हूँ रणधीर वीर ऐसा अनुमान कर।
बाहुओं को बल से विकल देख दौड़ चले
उस आपदा की ओर घोर गदा तान कर॥

(२०)

देखा बन-पथ एक रोक के पड़ा है कपि
करता है रव घोर पुच्छ के प्रहार से।
वृद्ध है शरीर दीन आँखों में भरा है नीर
चलता है श्वास ऊर्ध्व आयु के विकार से॥
नत मुख किये शैल-खंड का आधार लिये
बैठा है समौन किस विषम विचार से।
पिङ्गल-नयन अति विकट अयन और
प्रकट महानता है लघु आकार से॥

(२१)

जाने को उस ने उस पथ से निषेध किया
ज्यों ही भीम आगे कुछ होने लगे अग्रसर।
दुर्बल देह अति जर्जर प्राण लिये
रोक वन-मार्ग वह बैठ गया वनचर॥
भीम ने सगर्व देखा अपना असीम बल
पाने को सरोज अति आतुर थे वीरवर।
हास-युक्त ऐसी दैन्यता का उपहास किया
बाधा डालने के लिये देख उसे तत्पर॥

(२२)

भृकुटि कुटिल कर भीम ने कहा रे पशु !
जानता नहीं है तू विपत्ति से क्या डरना।
मेरे पद-पात के न योग्य तेरे जीर्ण गात
तेरी दुष्टता पै चाहता न ध्यान धरना॥
हित और अहित का ज्ञान भी तुझे न अभी
बुद्धिहीन जानते न कौन काम करना।
हट एक ओर अरे दीन वृद्ध मरकट
मेरा पथ रोक मूर्ख चाहता है मरना॥

(२३)

मन्द अति वाणी वह बोल उठा दीन प्राणी
भद्र सुनते हैं तुम ज्ञान में प्रधान हो।
वीर करते हो क्यों विनाश यों हमारा तुम
रक्षक दिशाओं के सज्ञान दयावान हो॥
देखो अन्य प्राणों को भी अपने ही प्राणों सम
जो कुछ हो किन्तु दैव सृष्टि में समान हो।
करना है व्यर्थ बाहुबल का प्रयोग बन्धु
हम क्षुद्र पशु तुम मानव महान हो॥

(२४)

छीन अधिकार अबलों के उन्हें हीन कर
वीर जाति जानती है ख्याति इस छल को ।
अपराध हीन मूक पशुओं का बध कर
शूर कहलाना कब युक्त है प्रबल को ॥
अस्त्र हीन पर क्या प्रहार शस्त्र करना है
कौन बुद्धि मलना है कोटि कीट दल को ।
कौन कहता है उस खल को सबल जो कि
बल दिखलाता किसी दीन निर्बल को ॥

(२५)

साहस करो न अब पद एक रखने का
जान लो पवित्र यह स्वर्ग का प्रदेश है ।
हितकर मेरी अवज्ञा का फल है न भद्र
सम्मुख तुम्हारे नाशकारी महा क्लेश है ॥
अन्य यदि होता उसे दण्ड युक्त देता किन्तु
कारण तुम्हारा ब्रह्मचारी जैसा वेष है ।
गम्य है मनुष्य को न विपिन का मार्ग रम्य
शीघ्र लौट जाओ मेरा अन्तिम आदेश है ॥

(२६)

जाना इस पथ में है मृत्यु को जगाना, कभी
लाना न विचार-मध्य भाव भी विरोध का ।
बोध करता हूँ तुम्हें जान के अबोध जन
जान लो है भेद मेरे मार्ग-अवरोध का ॥
मेरा कर्तव्य था कि रक्षा हो तुम्हारी वीर
हितकर परिणाम मेरे सद् बोध का ।
वीरता के साथ करो धीरता भी धारण, है
गर्व का निवारण न कारण है क्रोध का ॥

(२७)

भीम ने गदा की ओर दृष्टिपात कर कहा
ज्ञात है महत्व तुझे इस यम-दण्ड का ।
सुर-मार्ग हो कि यह क्यों न हो सुरेश-मार्ग
मैं भी अधिकारी हूँ महान भूमि-खण्ड का ॥
वानर से नर का विवाद एक अपवाद
योग तूल का है और अनल प्रचण्ड का ।
क्षुद्र विन्दु और कहाँ वारिधि विशाल मूर्ख
कहाँ दीप-द्युति कहाँ तेज मार्तण्ड का ॥

होता यदि मेरे ही समान बलवान अन्य
युद्ध में न मृत्यु के सम्मुख कभी हारता।
ऐसी धृष्टता का उसे देता उपयुक्त फल
किञ्चित न मन में दया का भाव धारता॥
मेरे अपमान का त्वरित ज्ञान होता उसे
सत्य है न सद और असद विचारता।
बोलना विशेष निज मुख से अयुक्त मुझे
दीन जो न होता तू अवश्य तुझे मारता॥

(२९)

आनत नयन अति नम्र कहा वानर ने
बढ़ो इस पथ में न करो कृपा मुझ पर।
धीर धारते हैं न अयुक्त कभी धारणा भी
कहते हैं वही जो कि करते हैं वीर नर॥
व्यर्थ ही विवाद में निरत करते हो नष्ट
मेरा और अपना अमूल्य अति अवसर।
शक्ति को सयत्न रखने का ही प्रयत्न करो
तुम एक बुद्धिमान और मैं अज्ञान नर॥

(३०)

और यदि तुम को है निज बाहुओं का गर्व
सम्मुख ही परीक्षा है विक्रम दिखाओ तो।
नर उपचार और शक्ति का प्रसार कर
पुनः एक बार अभिमान युक्त आओ तो॥
कितने गहन कैसा रखते हो वज्र तन
मार्ग से हटा के मुझे आगे बढ़ जाओ तो।
तन से हूँ क्षीण महा रोग से हूँ जीर्ण अति
किन्तु हूँ आसीन मेरे पुच्छ को हटाओ तो॥

(३१)

सुन उस प्राणी की सगर्व वीर वाणी यह
भीम ने कहा कि क्षुद्र जीव है तू वन का।
होता जो सज्ञान रखता न यह अभिमान
करता प्रयोग भी न कभी दुर्वचन का॥
सम्मुख हो मेरे वह सुर हो या नर महा
साहस भूतल पर ऐसा किस जन का।
वीर का असीम क्रोधयुक्त रक्त तप्त हुआ
रोम-रोम काँप उठा तेज भरे तन का॥

भीम का बल-प्रयोग

(३२)

मुख मोड़ हठ से तू पथ मेरा छोड़ दुष्ट
पात्र है दया का निज क्रोध मैं बढ़ाऊँ क्या ।
तेरे तुच्छ शब्दों को विचार-मध्य लाऊँ क्या मैं
तुझ निर्जीव दीन जीव को सताऊँ क्या ॥
केवल है प्राण अवशेष अस्थि-पञ्जरों में
वृद्ध है शरीर तेरा रक्त भी बहाऊँ क्या ।
आती मुझे लाज मैं हूँ वीरों का सुवीर राज
तुझ को उठाऊँ तेरे पुच्छ को हटाऊँ क्या ॥

(३३)

जानेगा महत्व मेरे बल का क्या खल तू
मैं हूँ सहोदर उस मारुति महान का ।
गोपद समान जो कि लांघ के गया था सिन्धु
जो है नाशकारी लङ्कपति-अभिमान का ॥
कीर्ति का प्रसार नभ-मण्डल में जिस का है
मान करते हैं तीन लोक गुण-गान का ।
पुत्र शक्तिधाम महा पावन पवन का मैं
बन्धु हूँ प्रधान वीर्यवान हनुमान का ॥

(३४)

चाहूँ यदि शैल की शिलाओं को मैं चूर्ण करूँ
क्षण में विदीर्ण करूँ दृढ़ भूमि-तल को।
चाहूँ यदि जल को बना दूँ थल पल में,
जल कर डालूँ और सूखे हुये थल को॥
करलूँ जो क्रोध तो समुद्र भरूँ शोणित का
करदूँ पराजित अपार शत्रु-दल को।
मेरे न समान वीर जग में महान अरे
धन्य कहता है संसार मेरे बल को॥

(३५)

कपि ने कहा कि व्यर्थ वंश-मर्यादा का ही
बार-बार लेके नाम मुझ को डराते हो।
बनते हो ज्ञानी कहते हो अभिमानी मुझे
वीरता की अपनी कहानी कहे जाते हो॥
हीन मानते हो प्राणियों को भुज पीन देख
कभी निज नाम के अनेक गुण गाते हो।
अवरोध करते हो क्रोध का अकारण ही
क्यों न आज निज बल प्रबल दिखाते हो॥

(३६)

भीम थे अवाक इस सवाक रुद्रता को देख
मुख से निकाला शब्द मुख में हो रह गया।
फड़क भुजाओं की अस्थियाँ कड़क उठीं
स्रोत मानो क्रोध का शरीर से था बह गया ॥
ज्वालायें अनिल की थीं आँखों से बरस पड़ीं
मानो एक साथ उर शत शर सह गया।
मस्तक में बार-बार आ गया विचार अहो
सम्मुख ही मेरे वृद्ध बानर क्या कह गया ॥

(३७)

मेरा अपमान है यह उक्ति तेरी अज्ञान
धैर्य में न चल हूँ मैं बल में न गम हूँ।
मेरी भुजाओं का भय भीषण है त्रिलोकी को
रखता हूँ शक्ति मैं, न अन्य व्यक्ति सम हूँ ॥
भीम विख्यात नाम मेरा है चराचर में
अग्नि सा ज्वलन्त घोर वायु सा विषम हूँ।
रखता अज्ञान तू न मेरी प्रभुता का ज्ञान
मैं भी एक अपर भूमण्डल का यम हूँ ॥

(३८)

जानता नहीं है मेरे बल को प्रबल पशु
काल के सम्मुख भीम एक महाकाल है।
मान मुझे तू न एक साधारण जन सम
सारे भूमि-मण्डल में मेरा उच्च भाल है॥
तुच्छ एक वानर की पुच्छ को हटाऊँ क्या मैं
दूर कर तेरा यह व्यर्थ वाक्-जाल है।
ऐसी दीन और वृद्ध आयु को भी प्राप्त हीन
खेद है कि वानर तू कितना वाचाल है॥

(३९)

क्रोधित न कर मुझे अब भी है अवसर
मेरे भुज-बल को कलङ्क क्या लगाना है।
अरे अज्ञान मेरा हित कर ज्ञान मान
अन्त को निकट जान अन्त पछताना है॥
देख हूँ सबल और तू है अति बलहीन
हठ का महान तुझे कटु फल पाना है।
होगा जब कर मेरा तेरे तुच्छ पुच्छ पर
मेरा है लजाना और तेरा मर जाना है॥

(४०)

भीम तब शीघ्र कपि पुच्छ को हटाने लगे
प्रथम बढ़ाया वाम बाहु तिरस्कार से ।
देख पुनः उस की कठिनता को भार-युक्त
युक्ति का प्रयोग किया विविध प्रकार से ।।
पौरुष प्रसार भीम नाद कर बार-बार
करते उपाय थे सहस्र उपचार से ।
बल था विफल घोर श्रम से विकल तन
तिल भी हटा न पुच्छ शक्ति के आधार से ।।

(४१)

साहस से एक बार और क्रोधयुक्त उठे
एक भी उपाय उपचार में न ला सके ।
दैव-शक्ति कौन सी विचित्र उस व्यक्ति में थी
भेद का कारण भी विचार में न ला सके ।।
उठते थे और बैठते थे अति आकुल हो
पार कुछ उस वन पशु का न पा सके ।
चूर-चूर शूरता शरीर की हुई थी किन्तु
स्वयम् हटे न कपि पुच्छ को हटा सके ।।

हतप्रभ भीम

(४२)

खेद भरे तन से सखेद मन अति भीम
बोले हो विकल आप मेरे पूज्यवर हो।
स्वर्ग के निवासी हो कि वासी हो धरा के मित्र
वज्र-वपुधारी हो विचित्र वनचर हो॥
होकर प्रसन्न कहो, कौन हो महान आप
देव देव बोलो आप सुर हो कि नर हो।
दोष कुछ मुझ अज्ञान का न ध्यान धरो
शूर शक्तिशाली हो विपुल शत्रु-हर हो॥

(४३)

शैल-सम आप का शरीर है अचल देव
बल भी सहस्र दिक्पालों जैसा लय है।
पात्र मुझे जानिये कृपा का हे वानर-वर
मुझे अब आप के पराक्रम का भय है॥
अविनय कर देखता हूँ अपनी ही हानि महा
मेरे नर-तन का समस्त बल क्षय है।
शत्रु-दल हुआ है न सम्मुख विजित कभी
मैं हूँ पराजित यह प्रथम समय है॥

(४४

धैर्य-हीन हुआ मैं निकृष्ट धृष्टता को कर
आप का किया है वचनों मे अपमान अति ।
याचक मैं दीन बन दयाभाव का हूँ देव
लज्जित हुआ हूँ आप देख ऐसी दुर्गति ॥
जानता नहीं हूँ कर्त्तव्य और कर्म कुछ
मानव की योनि है, मिली है मुझे जड़ मति ।
शुभ परिचय निज दे के कृपा-युक्त करो
मुक्त करो शोक से मुझे हे नरलोक-पति ॥

(४५)

बोले कपिराज तब भीम को विनीत देख
गम्य यह न पथ था किसी शक्ति-धर का ।
भय था मुझे कि देव शाप हो तुम्हें न कहीं
यह सुरधाम है, निषेध यहाँ नर का ॥
जाना इस पथ से है मृत्यु को जगाना मानो
यही उपदेश मुझ वृद्ध वनचर का ।
और बन्धु हनुमान जिसे कहते हो वीर
मैं हूँ वही एक दीन दास रघुवर का ॥

(४६)

बचनों ने बानर के भीम को चकित किया
हृदय में भय और विस्मय प्रधान था।
ऐसे दीन बानर के रूप में हैं हनुमान
दूर कल्पना से यह एक अनुमान था॥
बार-बार निज बाहुओं का बल तोलते थे
बोलते थे किस के समक्ष यह न ज्ञान था।
बोध हुआ शीघ्र और क्रोध सब दूर हुआ
आनत नयन, चूर-चूर अभिमान था॥

(४७)

आप कहते हैं यदि अपने को हनुमान
सुनने से देव जो न होता कभी बुद्धिगम।
जलधि अपार किया जिस से उल्लङ्घन था
वैसा ही स्वरूप दिखलाइये न पूर्व-सम॥
असुरों को मार किया देव निस्तार प्रभो
लङ्कापुर दाहन में कैसा किया परिश्रम।
पूज्य प्रभु राम के सुनाइये पवित्र गुण
जिस से हो नाश मुझ अज्ञ का अज्ञान तम॥

(४८)

मेरा इस विकट विपत्ति से जो त्राण किया
देव है विशेष यह अनुग्रह आप का।
और यदि सत्य आप वीर हनुमान हैं तो
दुष्ट मैं अवज्ञा कर भागी हुआ पाप का॥
गर्व से चपल जो सबल व्यवहार किया
कारण महान देखता हूँ तन-ताप का।
आप ही के श्रम से विनष्ट हुआ कष्ट मेरा
कारण था सम्भव जो देव अभिशाप का॥

(४९)

व्यर्थ वह रूप देखने को तुम उत्सुक हो
बोले कपिराज अनुचित यह हठ है।
काल-गति से है अब मेरा अति लघु तन
आयु अवसान और जरा भी निकट है॥
समय-प्रभाव से न देह धरता हूँ वह
जो कुछ है रूप वही सम्मुख प्रकट है।
देख नहीं पाते नर-चक्षु वह क्रूर रूप
काल-सा कराल है प्रलय-सा विकट है॥

(५०)

भय भी प्रलय जैसा देखने को तत्पर
उपदेश आप का विचार में न लाऊँगा।
वीर-रत्न क्यों न करें कोटि-कोटि यत्न किन्तु
क्रूर वह रूप बिना देखे मैं न जाऊँगा॥
लोक-लयकारी भवताप-हारी तन देख
क्षुद्र नर देह आज सफल बनाऊँगा।
धन्य मेरे सम और कौन नर अन्य होगा
ऐसा उपयुक्त अवसर कब पाऊँगा॥

(५१)

सुन यह याचना विशाल हुए कपिवर
घोर वज्र वपु का विचित्र विस्तार था।
त्रस्त हुए दिवस दिशाएँ और दिक्पाल
मानो महाकाल का अपर अवतार था॥
कुलिष की कोर से कठोर घोरतर अङ्ग
पुष्ट भुजदण्ड मानो विक्रम साकार था।
पार था विशाल कपिराज के आकार का न
द्वार-सा गुहा का महामुख का प्रसार था॥

हनुमान का विराट रूप

(५२)

तेज के प्रबल एक पुञ्ज का प्रसार हुआ
ज्वाला बरसाते हुए नेत्र लाल-लाल थे।
शैल की शिला का जैसा दीख पड़ा पक्ष देश
दृढ़ दन्त और नख कुटिल कराल थे॥
कोटि-कोटि रोम-जाल में थी एक दिव्य द्युति
स्वर्ण की शिखाओं जैसे पीत केश जाल थे।
भीम देख भीषण स्वरूप भयभीत हुये
मेरु से महान रूप मारुति विशाल थे॥

(५३)

देव बरसाने लगे हर्ष से सुमन-राशि
शब्द हुआ व्योम में तुमुल 'जय जय' का।
देख वह क्रूर काल जैसा विकराल रूप
चारों ओर लोक में प्रसार हुआ भय का॥
शैल-सा समुन्नत नभचुम्बी विस्तार-युत
कारण था मानो कि समस्त लोक-लय का।
लालिमा लिये था बाल-रवि सा प्रकाश-पुञ्ज
तेज से विकट रूप पवन-तनय का॥

(५४)

व्योम में रवि का प्रकाश हुआ मन्द अति
सारे ब्रह्ममण्डल में ज्योति-सी गई थी जग ।
जीव हुये जल और थल के विकल मानो
चीत्कार करते थे चकित विहग खग ॥
सुधि भीम भूल गये विस्मय में भूल गये
चक्षु चकाचौंध बुद्धि भी न रही थी सजग ।
कोलाहल-सा था इस लोक उस लोक में भी
डोल उठी तरणी सी धरणी भी डगमग ॥

(५५)

नतशिर कहने लगे 'त्राहि माम्, त्राहि माम्'
और चरणों में गिरे होकर दण्डायमान ।
भीम कपिराज का स्वरूप अद्भुत देख
मानवी पराक्रम का सारा भूल गये भान ॥
आते थे वचन मुख में न देह कम्पित थी
होने लगा जड़ता का अपने में अनुमान ।
हृदय सभीत हुआ विस्मय प्रतीत हुआ
मानो अब दीप हुआ ज्ञान का प्रकाशमान ॥

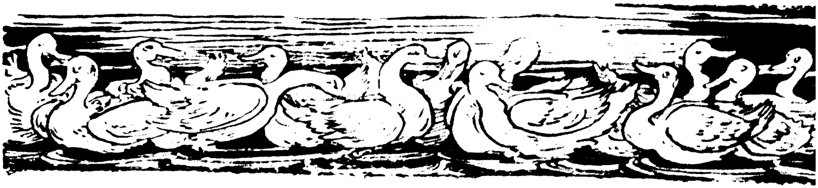

(५६)

देव अब देख लिया आप का अपूर्व रूप
क्षुद्रता को दास की विचार में न लाइये।
धन्य हुआ दिव्य-दर्शन कर दीन-बन्धु
यह क्रूर रूप अब मुझे न दिखाइये॥
दृष्टि से दया की देखिये हे महावीर-वर
निज चरणों का मुझे सेवक बनाइये।
मायावी शरीर की महानता को दूर कर
देव पूर्व-सम लघु वानर हो जाइये॥

(५७)

मुझ को सुनाइये हे भक्ति-विज्ञ कपिराज
वन का विचित्र वृत्तान्त प्रभु राम का।
पुण्य-फल पाते जिसे सुनने से सुरगण
जो कि क्लेश-नाशन चरित्र सुखधाम का॥
कौन युक्ति मुक्ति को है पाने की पवित्र देव
कैसा महात्म्य पाप-मर्दन निष्काम का।
कैसे आप ने था पुर लङ्का को जलाया और
कैसे किया दमन असुर दुर्दाम का॥

(५८)

हरण हुआ था कैसे कानन में मैथिली का
    असुर मारीच स्वर्ण-मृग बन आया था ।
किस भाँति आपने महान सिन्धु पार किया
    कैसे जानकी को दानवों में खोज पाया था ॥
कैसे गिरे रण में सौमित्र ब्रह्मचारी वीर
    ओषधि के हेतु भीम भूधर उठाया था ।
असुरों पर कैसे वानरों ने जय प्राप्त कर
    लङ्का का विभीषण को शासक बनाया था ॥

(५९)

अब कहता हूँ युग त्रेता की महान कथा
    कपि ने कहा कि वीर सुनो सावधान हो ।
जिस से तुम्हारी नरबुद्धि बने अविकार
    राम के पराक्रम का तुम्हें अनुमान हो ॥
कैसे मर्यादा का था मान किया राघव ने
    आसुरी समर की विकटता का ज्ञान हो ।
भावना भी भव्य भक्ति रत भगवान में हो
    भव का विभव व्याधि-सम भासमान हो ॥

(६०)

राम-गुणगान बन्धुवर अति पावन है
नाम ही से शुष्क सरोवर भर जाते हैं।
वाल्मीकि दस्यु जैसे मुनि बनते हैं महा
जग में स्वनाम को अमर कर जाते हैं ॥
नौका चल जाती कभी सूखे हुए थल पर
जल पर कठिन पाषाण तर जाते हैं।
देव-दुर्लभ जिस स्वर्ग में न जाते वहीं
गीध से अधम दिव्य-रूप धर जाते हैं ॥

(६१)

प्रथम गये थे राम वन को सबन्धु-दार
द्वादश वर्षों के लिये पितृ आज्ञा को मान।
शूर्पणखा नाम एक कानन-विहारिणी थी
मुग्ध हुई देख दिव्य राघव को रूपवान ॥
राम ने न याचना को उस की स्वीकार किया
जाना तब दानवी ने यह निज अपमान।
और हुई काल-सी कराल वह नीच तब
लक्ष्मण ने काट लिये कुलटा के नाक-कान ॥

(६२)

हर ले गया था राम-पत्नी को विपिन में
　　दशमुख लङ्का का महीप एक यातुधान ।
राम से हुई थी भेंट मेरी तब शैल पर
　　शासन सुग्रीव को दिया था निज मित्र जान ॥
युवराज अङ्गद हुए थे कपि शासन के
　　चूर्ण हुआ बालिराज वानर का अभिमान ।
सीता-सुधि लेने को गया था लङ्क नगरी में
　　श्वास एक ही में सिन्धु पार किया था महान ॥

(६३)

विविध उपाय कर गया दानवों के मध्य
　　सुखद सन्देश सीता देवि को सुनाया था ।
लीला से अशोक नाम वन को विनाश कर
　　अभिमानी असुरों को कौतुक दिखाया था ॥
और दुष्ट दानव-समूह को हनन किया
　　युक्ति से कनक-मय नगर जलाया था ।
नाश करने को रघुवीर की व्यथा का पुनः
　　चूडामणि सीता का प्रमाण-रूप लाया था ॥

(६४)

राम ने अनन्त सैन्य लेकर प्रस्थान किया
सेतु बाँध सागर को पार किया क्षण में।
सन्धि का उपाय दूत द्वारा था अनेक किया
किन्तु भेद दैत्य के न आया आचरण में॥
अन्त में अपार कपि असुरों का युद्ध हुआ
कोटि-कोटि भट थे संहार हुये रण में।
रावण को मार विभीषण को दिया था राज्य
राम के निकट जो कि आया था शरण में॥

(६५)

शक्ति मेघनाद की लगी थी जब लक्ष्मण को
दुःख से श्रीराम ने महान शोक माना था।
कठिन है कार्य देवि मैथिली का पाना अब
ध्रुव पराजय यह कपियों ने माना था॥
किन्तु हुआ दैव अनुकूल मिले साधन भी
दुष्टों का पतन था, हमारा जय पाना था।
औषधि मैं लाया और मैं ने यश पाया यह
राम की कृपा थी मेरा गौरव बढ़ाना था॥

(६६)

वानरों के साथ प्रभु लौटे निज नगरी में
स्वागत को अवध में अति हर्ष छा गया।
युक्त शब्द वाणी को न भाषा में मिलेंगे बन्धु
भूतल वह अमरपुरी की शोभा पा गया॥
लज्जित था सञ्चित कुबेर का भी कोष मानो
वैभव विराट राम राज्य में था आ गया।
राम के अधीन हुये भूमि के विजेता सब
और पुनः सत्ययुग त्रेता में समा गया॥

(६७)

चारों युगों में सत्ययुग ही था श्रेष्ठ अति
भोग का न लेश था प्रचार सत्य-ज्ञान का।
त्रेता युग में था मर्यादा का महान बल
विप्रगण जानते थे तत्व वेदगान का॥
द्वापर में यज्ञ और कर्म की प्रधानता है
और है महत्व महा व्रत और दान का।
केवल है कलि में अधर्म-युक्त कर्मनीति
समय यही है पृथ्वी के अवसान का॥

(६४)

राम ने अनन्त सैन्य लेकर प्रस्थान किया
सेतु बाँध सागर को पार किया क्षण में।
सन्धि का उपाय दूत द्वारा था अनेक किया
किन्तु भेद दैत्य के न आया आचरण में॥
अन्त में अपार कपि असुरों का युद्ध हुआ
कोटि-कोटि भट थे संहार हुये रण में।
रावण को मार विभीषण को दिया था राज्य
राम के निकट जो कि आया था शरण में॥

(६५)

शक्ति मेघनाद की लगी थी जब लक्ष्मण को
दुःख से श्रीराम ने महान शोक माना था।
कठिन है कार्य देवि मैथिली का पाना अब
ध्रुव पराजय यह कपियों ने माना था॥
किन्तु हुआ दैव अनुकूल मिले साधन भी
दुष्टों का पतन था, हमारा जय पाना था।
औषधि मैं लाया और मैं ने यश पाया यह
राम की कृपा थी मेरा गौरव बढ़ाना था॥

(६६)

वानरों के साथ प्रभु लौटे निज नगरी में
स्वागत को अवध में अति हर्ष छा गया।
युक्त शब्द वाणी को न भाषा में मिलेंगे बन्धु
भूतल वह अमरपुरी की शोभा पा गया ॥
लज्जित था सञ्चित कुबेर का भी कोष मानो
वैभव विराट राम राज्य में था आ गया।
राम के अधीन हुये भूमि के विजेता सब
और पुनः सत्ययुग त्रेता में समा गया ॥

(६७)

चारों युगों में सत्ययुग ही था श्रेष्ठ अति
भोग का न लेश था प्रचार सत्य-ज्ञान का।
त्रेता युग में था मर्यादा का महान बल
विप्रगण जानते थे तत्व वेदगान का ॥
द्वापर में यज्ञ और कर्म की प्रधानता है
और है महत्व महा व्रत और दान का।
केवल है कलि में अधर्म-युक्त कर्मनीति
समय यही है पृथ्वी के अवसान का ॥

(६४)

राम ने अनन्त सैन्य लेकर प्रस्थान किया
सेतु बाँध सागर को पार किया क्षण में।
सन्धि का उपाय दूत द्वारा था अनेक किया
किन्तु भेद दैत्य के न आया आचरण में॥
अन्त में अपार कपि असुरों का युद्ध हुआ
कोटि-कोटि भट थे संहार हुये रण में।
रावण को मार विभीषण को दिया था राज्य
राम के निकट जो कि आया था शरण में॥

(६५)

शक्ति मेघनाद की लगी थी जब लक्ष्मण को
दुःख से श्रीराम ने महान शोक माना था।
कठिन है कार्य देवि मैथिली का पाना अब
ध्रुव पराजय यह कपियों ने माना था॥
किन्तु हुआ दैव अनुकूल मिले साधन भी
दुष्टों का पतन था, हमारा जय पाना था।
औषधि मैं लाया और मैं ने यश पाया यह
राम की कृपा थी मेरा गौरव बढ़ाना था॥

(६६)

वानरों के साथ प्रभु लौटे निज नगरी में
स्वागत को अवध में अति हर्ष छा गया ।
युक्त शब्द वाणी को न भाषा में मिलेंगे बन्धु
भूतल वह अमरपुरी की शोभा पा गया ॥
लज्जित था सञ्चित कुबेर का भी कोष मानो
वैभव विराट राम राज्य में था आ गया ।
राम के अधीन हुये भूमि के विजेता सब
और पुनः सत्ययुग त्रेता में समा गया ॥

(६७)

चारों युगों में सत्ययुग ही था श्रेष्ठ अति
भोग का न लेश था प्रचार सत्य-ज्ञान का ।
त्रेता युग में था मर्यादा का महान बल
विप्रगण जानते थे तत्व वेदगान का ॥
द्वापर में यज्ञ और कर्म की प्रधानता है
और है महत्व महा व्रत और दान का ।
केवल है कलि में अधर्म-युक्त कर्मनीति
समय यही है पृथ्वी के अवसान का ॥

(६८)

धर्म-गति अब अति वक्र हो चली है वीर
पूर्व-सम अब भोग है न योग-बल है।
हीन नर-जाति है विलासिता की दास बनी
सत्य-साधना से हुआ हीन धरातल है॥
आत्मबल-सिद्धि की सुधा का हुआ लोप अब
प्रीति विषयों की वासना का हलाहल है।
होते हैं मनुष्य भी न पूर्व से चिरायु और
वह पूर्व जैसा शुद्ध वायु है न जल है॥

(६९)

राम की अपार कृपा वत्स भीम मुझ पर
प्रभु के प्रताप से ही मेरा अति मान है।
लोक में रहूँगा सदा जीवित सुखों से युक्त
जब तक राम का चरित्र विद्यमान है॥
राघव की भक्ति में रहेगी अनुरक्ति मेरी
राम का आशीर्वाद अटल प्रदान है।
सतत मिलेंगे सुख-भोग के साधन सब
माता जानकी का यही शुभ वरदान है॥

(७०)

द्वार स्वर्ग का है यह देवों का प्रवेश-मार्ग
    देव-सुता करतीं विहार स्वच्छन्द हैं।
रहता है नित्य पुण्य-सलिल-प्रवाह यहाँ
    चलतीं त्रिविध-तापहर वायु मन्द हैं॥
घोर अघहर रामचन्द्र की कृपा से मुझे
    नव-नव सुखकारी मिलते आनन्द हैं।
गाते रघुपति के हैं गुण गंधर्व राम-
    चरित सुनाते अप्सराओं के वृन्द हैं॥

(७१)

व्याधि और दुख नरलोक के नहीं हैं यहाँ
    व्यापक न जन्म और यौवन जरा का भय।
वासना न स्पर्श करती है इस वायु को भी
    पाप का न लेश और शेष सब पुण्यमय॥
देते हैं सुव्यंजन विविध विधि कल्पवृक्ष
    जल है यहाँ का मानो पाप-नाशकर पय।
वाणी करती है निज वाणी को सफल यहाँ
    बोलते हैं सुरवृन्द राघव की जय-जय॥

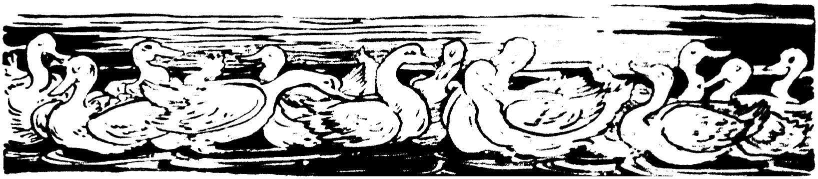

(७२)

गूँज उठा यक्ष और किन्नरों का कल-कण्ठ
प्रकृति-प्रसन्न धीर शीतल समीर था।
मिलते थे मानो मदमत्त दो गयन्दराज
अतिशय हर्षयुक्त हृदय अधीर था॥
रोम-रोम रञ्जित थे स्नेह की सुधा से मानो
मूक हुई गिरा और पुलक शरीर था।
शोक-नाशकर एक दोनों का था बाहु पाश
भरा हुआ प्रेम-युक्त नयनों में नीर था॥

(७३)

पूज्य किन शब्दों में पवित्र गुणगान करूँ
देव द्युतिधारी ब्रह्मचारी अति शुद्ध हो।
पाण्डव अनाथ मानो आज से सनाथ हुए
स्वामी हो हमारे और स्वयम् प्रबुद्ध हो॥
करतल-मध्य ज्ञान-सहित हैं तीन लोक
कर दें विनाश आप काल को भी क्रुद्ध हो।
वीरों के नायक आप निश्चय सहायक हों
कौरवों से जब कि हमारा धर्मयुद्ध हो॥

(७४)

बाल-रूप में ही रवि रख लिया मुख-मध्य
　　ओषधि के हेतु शैल लिया कर पर धार ।
शोक हर सीता का, जलाया पुर दानवों का
　　रामदूत बन के किया था महासिन्धु पार ॥
पातक पिशाच और प्रेत करता है नाश
　　नाम मुख से भी जो निकलता है एक बार ।
संकट हमारे सब काटिये हे कपिराज !
　　दास करता हूं नत आप को नमस्कार ॥

(७५)

बोले हनुमान उपकार मैं करूँगा यह
　　स्नेहवश युद्ध के विषम अवसर में ।
पार्थ के रथ की ध्वजा पर हो रहूँगा तिष्ठ
　　विजय तुम्हारी होगी वीरों के निकर में ॥
घोर रव मेरा सुन शत्रु अभिभूत होंगे
　　शक्ति यह मेरे सिंहनाद घोरतर में ।
शस्त्र अब धारण करूँगा कभी कर में न
　　हिंसा-वृत्ति त्याग दी है लङ्का के समर में ॥

(७६)

अन्तिम यह मेरा उपदेश है तुम्हारे हित
भूलो कदापि न अपने को अहंकार में।
वैभव के वश हो न भोग से संयोग करो
चित्त को न चल करो वासना-विकार में॥
सत्य से सुशोभित बनाओ निज वचनों को
बल को सफल करो पर-उपकार में।
त्यागो अभिमान करो, किसी का न अपमान,
ज्ञान से सदैव धरो धर्म को विचार में॥

(७७)

स्नेहयुक्त दिया तब मारुति ने साधुवाद
बुद्धि हो तुम्हारी सत्कीर्ति के प्रसार में।
कञ्ज कुछ आगे ही मिलेंगे इस कानन में
और कहा रहो रत नित्य सदाचार में॥
धर कर भीम के मस्तक पर कृपा से कर
इच्छा की उन्हों ने कि यश हो संसार में।
सौगन्धिक वन का दिखा के कपिराज मार्ग
सहसा विलीन हुये घन कान्तार में॥

(७८)

भीम इस कपि का विचित्र हाल देखकर
    विविध हृदय में विचार करते हुये
मौन चले कपि के बताये हुये मार्ग पर
    होकर प्रबुद्ध शुद्ध ध्यान धरते हुये ॥
सुन रामचन्द्र का चरित्र थे चकित-चित्त
    बन्धु का पवित्र प्रीतिभाव भरते हुये।
वन्दनीय कपि के दर्शन से प्रसन्न हुये
    विस्मय के वारिधि को मानो तरते हुये ॥

(७९)

आगे था कुबेर का सरोवर सुरम्य अति
    नीलमणि जैसा नीर जिस का विमल था।
सौरभ से युक्त थे सरोज अगणित वहाँ
    रक्षा को नियुक्त किन्तु दानवों का दल था ॥
अलिगण पान करते थे मरकन्द मन्द
    गुञ्जरित नाना पक्षियों का नाद कल था।
पुण्यभूमि पावन थी वह सिद्ध चारणों की
    उपभुक्त जिस का सुरों से दिव्य जल था ॥

(८०)

कञ्ज के समूह से सरोवर को व्याप्त देख

प्राप्त करने को अग्रसर हुए उस ओर।

टूट भुजबन्द गिरे भूमि पर छूट कर

फड़के विशाल बाहु मुष्टिक हुआ कठोर॥

वक्ष ने विशाल हो विषमता का रूप लिया

कालकूट बन गई कुटिल भृकुटि-कोर।

व्याल से कराल बाल भूल गये भाल पर

ठोक कर ताल किया सिंह-सम नाद घोर॥

(८१)

क्रोधित हो रक्षक-गणों ने तब कहा वीर

कौन तुम नर किस हेतु कहाँ जाओगे।

इस देवधाम में न काम नर-जाति का है

भंग कर आज्ञा तुम अति क्लेश पाओगे॥

अधिकार देव धनपति का है कानन में

बुद्धिमान हो तो निज प्राणों को बचाओगे।

तरण तुम्हारा है न मरण विचारो अब

यदि तुम आगे एक चरण उठाओगे॥

(८२)

रक्षक-गणों से तब भीम ने कहा कि अरे
पाण्डु-पुत्र धर्मराज का मैं लघु भ्राता हूँ।
द्रुपद दुलारी को हैं आवश्यक कञ्ज कुछ
आने का अपने मुख्य कारण सुनाता हूँ॥
शिखर कैलाश के प्रदेश में है यह वन
स्वत्व है हमारा नहीं दोष कुछ पाता हूँ।
दौड़ो और शीघ्र तुम रक्षा का उपाय करो
बल से मैं सौगन्धिक पुष्प लिये जाता हूँ॥

(८३)

आक्रमण रक्षक-गणों का घोर देख तब
भीम भी कुपित हो प्रहार करने लगे।
विषधर जैसी तीव्र बाण-वर्षा को रोक
मुष्टिक से असुरों के प्राण हरने लगे॥
क्रोध से घुमाया यमदण्ड-सी गदा को और
होकर कराल काल-रूप धरने लगे।
कोटि-कोटि शत्रु कट-कट गिरे भूमि पर
मुण्ड-हीन रुण्ड रणभूमि भरने लगे॥

(८४)

लेकर अनेक सौगन्धिक सरोवर से
लौट चले आश्रम की ओर को प्रसन्न मन।
मत्त चाल से वे उस भूपर थे गतिमान
जैसे व्योम-मंडल में घूमता हो घोर घन॥
पुष्प अभिषेक तरुवृन्द करते थे और
धन्य मानते थे मानो वन और उपवन।
भेंटे बन्धुओं से दिया द्रौपदी को शतदल
और मिले द्रौपदी से द्रौपदी के प्राणधन॥

॥ इति ॥

मूल्य बारह आने